

प्रवचन नं. २५२, गाथा-१७३ से १७६, श्लोक ११८-११९      दिनाङ्क १३-०६-१९७९  
बुधवार, ज्येष्ठ कृष्ण ३

(समयसार) ११८ कलश है, उस पर (चलता है)। जब तक मिथ्यात्व का उदय है... अर्थात् क्या? कि दर्शनमोह जो कर्म है, उसका उदय है और उसमें युक्त होकर, उसमें जब जुड़ता है, वह दर्शनमोह का उदय है, वह कुछ नहीं कराता, परन्तु स्वरूप चैतन्यस्वरूप अपना अखण्ड है, उस ओर का आश्रय / लक्ष्य छोड़कर दर्शनमोह के उदय काल में उसमें युक्त होकर जीव रागद्वेषमोहभाव से परिणमित होता है,.. आहाहा! तब तक ही उसे अज्ञानी और बन्धक कहा जाता है।

यहाँ दृष्टि प्रधान कथन है न! जब तक मिथ्यात्व के उदय में जुड़ता है, तब तक उसे आस्रव और बन्धन कहा जाता है। तब तक ही उसे अज्ञानी.. आहाहा! है न? और बन्धक कहा जाता है। इस प्रकार ज्ञानी-अज्ञानी और बन्ध-अबन्ध का यह भेद जानना। धर्मी जीव (को) तो आत्मा पूर्ण शुद्धस्वरूप (है, उस) ओर की दृष्टि है, धर्मी का पर्याय में झुकाव द्रव्यस्वभाव-सन्मुख है, इसलिए उसे ज्ञानी कहा जाता है। आहाहा!

शुद्ध चैतन्यस्वरूप सम्यग्दर्शन जैसा शुद्धस्वरूप है, उसकी प्रतीति और ज्ञान (हो), उस स्व के सन्मुख होकर स्व की प्रतीति और ज्ञान हो तथा उसका अनुभव हो, उसे सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी कहने में आता है और जब तक दर्शनमोह का उदय हो और उसमें मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप से युक्त हो, तब तक उसे अज्ञानी और बन्धक (कहा जाता है)। ज्ञानी को ज्ञानी और अबन्धक (कहा जाता है)। यह शैली अभी ली है। ज्ञानी-अज्ञानी और बन्ध-अबन्ध का यह भेद जानना।

और शुद्ध स्वरूप में लीन रहने के अभ्यास द्वारा.. धर्मी अपना पवित्र आनन्दधाम मूल वस्तु है, उसके भान में तो है, परन्तु उसके अभ्यास द्वारा—अन्तर में एकाग्रता के अभ्यास द्वारा केवलज्ञान प्रगट होने से.. यह वस्तुस्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसका अनुभव है और अब भी पश्चात् उस ओर के अभ्यास में अर्थात् एकाग्रता में अभ्यास करते हुए उसे केवलज्ञान होता है। कोई क्रियाकाण्ड करते हुए—व्रत, तप, भक्ति, पूजा करते हुए केवलज्ञान नहीं होता। आहाहा!

जब जीव साक्षात् सम्पूर्ण ज्ञानी होता है.. वह (ज्ञानी कहा) था, वह चौथे गुणस्थान से मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अभाव (हुआ था), सम्यग्दर्शन और स्वरूप के अंश की स्थिरता हुई, इसलिए उसे ज्ञानी और अबन्धक कहा था। अब वह स्वयं अपने स्वरूप का अन्तर में अभ्यास-एकाग्रता का अभ्यास करते-करते उसे जब केवलज्ञान होता है, (तब) वह साक्षात् सम्पूर्ण ज्ञानी (होता है)। साक्षात् और सम्पूर्ण ज्ञानी (होता है)। पहले निचली भूमिका में ज्ञानी और अबन्धक कहा परन्तु वह आत्मा के आनन्दस्वरूप में जो अनुभव में आत्मा आया था, उस आत्मा में अन्तरस्थिरता... स्थिरता... स्थिरता... अन्तर में लीनता का अभ्यास करने से केवलज्ञान होता है, वह साक्षात् ज्ञानी और पूर्ण ज्ञानी हुआ। साक्षात् पूर्ण ज्ञानी (होता है)। तब वह सर्वथा निरास्रव हो जाता है,.. उसे फिर कोई आस्रव नहीं रहता। यह पहले कहा जा चुका है।

### कलश-११८

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:-

( मालिनी )

विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः,  
समय-मनुसरन्तो यद्यपि द्रव्य-रूपाः ।  
तदपि सकल-रागद्वेष-मोहव्युदासा-  
दवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्म-बन्धः ॥११८॥

श्लोकार्थ : [यद्यपि] यद्यपि [समयम् अनुसरन्तः] अपने-अपने समय का अनुसरण करनेवाले (अपने-अपने समय में उदय में आनेवाले) [पूर्वबद्धाः] पूर्वबद्ध (पहले अज्ञान-अवस्था में बँधे हुवे) [द्रव्यरूपाः प्रत्ययाः] द्रव्यरूप प्रत्यय [सत्तां] अपनी सत्ता को [न हि विजहति] नहीं छोड़ते (वे सत्ता में रहते हैं), [तदपि] तथापि

[सकलरागद्वेषमोह-व्युदासात्] सर्व रागद्वेषमोह का अभाव होने से [ज्ञानिनः] ज्ञानी के [कर्मबन्धः] कर्मबन्ध [जातु] कदापि [अवतरति न] अवतार नहीं धरता-नहीं होते।

भावार्थ : ज्ञानी के भी पहले अज्ञान-अवस्था में बाँधे हुए द्रव्यास्रव सत्ता-अवस्था में विद्यमान हैं और वे अपने उदयकाल में उदय में आते रहते हैं। किन्तु वे द्रव्यास्रव ज्ञानी के कर्मबन्ध के कारण नहीं होते, क्योंकि ज्ञानी के समस्त रागद्वेषमोहभावों का अभाव है। यहाँ समस्त रागद्वेषमोह का अभाव बुद्धिपूर्वक रागद्वेषमोह की अपेक्षा से समझना चाहिए॥११८॥

श्लोक - ११८ पर प्रवचन

अब ११८ कलश

विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः,  
समय-मनुसरन्तो यद्यपि द्रव्य-रूपाः ।  
तदपि सकल-रागद्वेष-मोहव्युदासा-  
दवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्म-बन्धः ॥११८॥

आहाहा! आस्रव में मुख्य अधिक यह बात ली है। बाकी तो कहा, जब तक यथाख्यातचारित्र न हो, तब तक अभी अस्थिरता है और उतना दोष भी है और उतना बन्धन भी है परन्तु मुख्यरूप से ऐसे जब ज्ञानी की बात करने जाए अर्थात् आत्मा का जहाँ अनुभव हुआ, परमात्मा का अनुभव हुआ, वह पूर्ण अनन्त गुण के रस का कन्द प्रभु है, उसके सन्मुख होकर जो अनुभव हुआ, तब से उसे ज्ञानी और अबन्धक कहा जाता है और उस ज्ञान में अभ्यास करते-करते केवलज्ञान हो, तब साक्षात् सम्पूर्ण ज्ञानी कहने में आता है। उसमें ज्ञानी कहना, इतना था। यह सम्पूर्ण ज्ञानी (होता है)। आहाहा! परन्तु होता है किस प्रकार से? सम्पूर्ण ज्ञानी या अपूर्ण ज्ञानी होता किस प्रकार है?

यह अन्तर आत्मा प्रभु, परमात्मा सर्वज्ञदेव ने जो आत्मा कहा, वह अनन्त-अनन्त गुण का रसकन्द प्रभु है। वीतरागमूर्ति है, अनाकुल आनन्द का पिण्ड है, अनाकुल शान्ति का पूर्ण वीतरागस्वभाव का रस है। आहाहा! उस (ओर के) झुकाव से, ऐसे स्वभाव की

ओर के झुकाव से जो ज्ञान और दर्शन होता है, उसे यहाँ ज्ञानी कहा जाता है और उसे अबन्धक कहा जाता है। बाह्य से चाहे जितने पंच महाव्रत पालता हो, परन्तु जिसे अभी राग है, उसकी एकताबुद्धि है, वहीं नजर है; भगवान पूरा परमात्मा पड़ा है, उसकी नजर नहीं है। आहाहा! भले पंच महाव्रत पाले, नग्न हो, दिगम्बर हो, हजारों रानियाँ छोड़े परन्तु अन्तर में जहाँ तक पूर्णानन्द का स्पर्श न करे और राग की क्रिया से भिन्न न पड़े, तब तक वह मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी है। आहाहा! ऐसा है।

अब श्लोक। यद्यपि 'समयम् अनुसरन्तः' क्या कहते हैं? ज्ञानी को पूर्व के जो कर्म सत्ता में पड़े हैं, वे अपने-अपने समय का अनुसरण करनेवाले (अपने-अपने समय में उदय में आनेवाले).. उस-उस समय में वे कर्म उदय में आते हैं। ऐसे पूर्वबद्ध (पहले अज्ञान-अवस्था में बँधे हुवे).. ज्ञानी को पूर्व में अज्ञान-अवस्था में बँधे हुए कर्म, वे समय-समय में उदय में आते हैं। आहाहा!

'द्रव्यरूपाः प्रत्ययाः' द्रव्यरूप प्रत्यय.. वह परमाणु वस्तु है। आठ कर्मरूप परमाणु (वस्तु है), वह अपनी सत्ता को नहीं छोड़ते 'सत्तां न हि विजहति' (वे सत्ता में रहते हैं), तथापि 'सकलरागद्वेषमोह-व्युदासात्'.. आहाहा! यहाँ तो राग-द्वेष-मोह, मिथ्यात्व का मोह और अनन्तानुबन्धी का राग-द्वेष को यहाँ गिनने में आया है। वह सकल सर्व रागद्वेषमोह का अभाव होने से ज्ञानी के कर्मबन्ध कदापि अवतार नहीं धरता.. आहाहा! अल्प राग होता है और उसके कारण कर्म में जरा स्थिति, रस पड़ता है परन्तु वह अल्प है, उसकी गिनती न गिनकर यहाँ आत्मज्ञानस्वरूप आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, तब आत्मा आनन्दस्वरूप पूर्ण है, ऐसा जानने में, प्रतीति में आया, उसे यहाँ ज्ञानी कहने में आता है। उस ज्ञानी को अज्ञानरूप से बँधे हुए कर्म समय-समय में उदय में आते हैं, परन्तु यहाँ जुड़ान में राग-द्वेष-मोह का जुड़ान नहीं है। मिथ्यात्वसम्बन्धी का राग का जुड़ान नहीं है। उसके कारण उनका अभाव होने से ज्ञानी के कर्मबन्ध कदापि.. 'अवतरति न' अर्थात् नहीं होते। अवतरते नहीं अर्थात् नहीं होते। आहाहा! इसमें वापस एकान्त ले जाए (तो नहीं चलता)।

मुमुक्षु : अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व का अवतार नहीं होता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की अपेक्षा से बात है। एकान्त ले जाए (कि) समकिति हुआ अर्थात् ज्ञानी हुआ, इसलिए अब उसे कुछ दुःख भी नहीं और आस्रव नहीं, बन्धन नहीं।—ऐसा नहीं है। आहाहा! कहाँ-कहाँ क्या कहने का आशय है? (उसका) हार्द समझे। नहीं आया था? धर्मी जीव जिस जगह क्या कहना है, उसका हार्द समझे और कहनेवाले की अपेक्षा क्या है, उसका हार्द समझता है। आया था न? आहाहा!

इस शरीर-मिट्टी-जड़ से भिन्न, कर्म के रजकणों से भिन्न और अन्दर पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव से भी भगवान तो अन्दर भिन्न है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा अन्दर सत्दल पड़ा है, अतीन्द्रिय आनन्द का दल... दल... पिण्ड है। आहाहा! उसकी जिसे दृष्टि होकर अनुभव हुआ, उसे अब मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष-मोह, पूर्व के बँधे हुए उदय के अनुसार जो होते, वह अब नहीं होते। आहाहा! भारी कठिन काम! पूरा समेटकर अन्दर में जाना। बाहर के संयोग भले करोड़ों मन्दिर बनाये हों, करोड़ों गजरथ निकाले हों, वह कोई चीज़ नहीं है। वह तो परमाणु की उस समय की वह अवस्था होनेवाली, वह परमाणु से होती है, आत्मा उसे नहीं कर सकता। आहाहा! उसमें करे तो शुभराग करे। वह शुभराग भी यदि मेरा है, ऐसा माने तो वह भी मिथ्यादृष्टि अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष को करता है। आहाहा!

जिसने भगवान आत्मा को पूर्ण सबसे भिन्न—विकल्प से लेकर सब चीज़ों से भिन्न (जाना है)। पूरा एक ओर आत्माराम तथा एक ओर सब गाँव। प्रभु पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा प्रभु, उस पर जिसकी दृष्टि पड़ी, उस पर झुकाव हुआ, उसने परमात्मा को स्वीकार किया, उसे परमात्मस्वरूप का सत्कार किया, उस जीव को अब कहते हैं (कि) मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष नहीं होते। आहाहा!

ऐसे हजारों रानियाँ छोड़कर नग्न-दिगम्बर हो, पंच महाव्रत पाले, अट्टाईस मूलगुण पाले, तो भी वह तो उसे धर्म मानता है, इसलिए मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! (निज) भगवान को भूल जाता है। भगवान अर्थात्? भग अर्थात् लक्ष्मी। अनन्त-अनन्त अन्तर आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी पड़ी है, उसका वान। भगवान—उस भग का वान (अर्थात्) स्वरूप है। अन्तर की लक्ष्मी है, उसका—आत्मा का स्वरूप है। आहाहा! यह पुण्य और पाप, दया

और दान, व्रत और भक्ति वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है। वह तो विकृत व्यभिचार दशा है। आहाहा!

जिसने अन्तर्मुख के परिणाम शुरु किये हैं... आहाहा! जिसने सुख के पन्थ को आदर किया है... आहाहा! अन्तर में एकाग्र होकर अनुभव (किया है), उस सुख के पन्थ में समकिति-सम्यग्दृष्टि पड़ा है। आहाहा! जिसने दुःख का पन्थ पूरा रोका। इस प्रकार यहाँ पूर्ण लेना है। थोड़ा राग-द्वेष है, आस्रव है, परन्तु वह अल्पता गिनकर, उसे नहीं है (कहा), परन्तु बिल्कुल नहीं है, ऐसा एकान्त कोई ले जाता हो तो ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन होने के बाद भी उसे चारित्रदोष है। उसे टालकर जब स्वरूप में स्थिर होगा, तब आनन्द और शान्ति प्रगट होगी, तब उसे आस्रव और बन्ध जरा भी नहीं होगा। आहाहा! ऐसा मार्ग! वाणी से पार, वचन से, विकल्प से पार, राग से पार, ऐसी भगवान अन्दर चीज़ है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ज्ञान में राग तो भिन्न किया है न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह (भिन्न) किया नहीं (परन्तु) पड़ गया है। अन्तर में ऐसे (अन्तर्मुख) हुआ, इसलिए राग भिन्न पड़ गया। इस प्रकार (राग) आया नहीं क्योंकि इसकी चीज़ नहीं है। आहाहा!

प्रभु! बात तो मुश्किल (वाली है) अनन्त काल का अभ्यास नहीं। लोगों की पूरी प्रवृत्ति क्रियाकाण्ड में (चढ़ गयी)। राग और यह दया पालो, व्रत करो, पूजा करना, भक्ति करना, अपवास करना, गजरथ करना, रथ चलाना... कहाँ वहाँ धर्म है? लाख यात्राएँ सम्मेशिखर की करना...

**मुमुक्षु :** आगम मन्दिर की तो यात्रा करना या नहीं ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आगम मन्दिर की लाख बार यात्रा कर तो शुभभाव है। इस मन्दिर की गिनती क्या? यह तो छब्बीस लाख का है, परन्तु भरत चक्रवर्ती ने तीन चौबीसी के मन्दिर बनाये। भरत चक्रवर्ती ने अष्टापद पर्वत में तीन चौबीसी के मन्दिर (बनाये)। अरबों-अरबों रुपये का एक-एक मन्दिर!

**मुमुक्षु :** रत्न के बनाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अरबों के रत्न के अकेले! एक-एक रत्न लाखों की कीमत का!

ऐसे अकेले रत्न से (बनाये)। उससे क्या? उस ओर का लक्ष्य है, वह शुभराग है; धर्म नहीं और धर्म का कारण भी नहीं। वह भाव बन्ध का कारण है। आहाहा! आवे, धर्मी को भी अशुभ से वंचनार्थ-अशुभ को छोड़ने (के लिए आवे), ऐसा कहा जाता है, बाकी तो उस समय में आवे। आहाहा! परन्तु हेयबुद्धि से आवे। उपादेयबुद्धि से आवे तो आत्मा हेय हो जाए। यदि शुभभाव में उपादेयबुद्धि आवे, आदरणीय (माना जाए) तो भगवान पूर्णानन्द का नाथ अन्दर हेय हो जाए और जिसने भगवान आत्मा को उपादेय किया, उस समकिति को राग-तीर्थकरगोत्र बाँधे, वह राग भी हेय हो जाता है। आहाहा! आवे, होता है। पूर्ण वीतराग न हो, तब राग आता है। आहाहा! परन्तु वह सब हेयरूप से होता है। उपादेय तो एक प्रभु तीन लोक का नाथ... आहाहा!

कलश जैसे अमृत के रस से भरा हो, कलश... कलश... लोटा! यह भी यह लोटा है न! यह देखो न! अन्दर भगवान अमृत के रस से पूर्ण भरपूर है। आहाहा! अतीन्द्रिय अमृत के रस से भरपूर प्रभु आत्मा है, भाई! आहाहा! जिसे द्रव्यस्वभाव कहते हैं। पर्याय तो एक समय की है, परन्तु द्रव्यस्वभाव कहें तो पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. अमृत के रस से भरपूर है। आहाहा! इस कलश के आकार से आकार ऐसा है इसका, उसे (कलश के) कारण नहीं। स्वयं के कारण आकार है। व्यंजनपर्याय है न! आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा... अरे रे! आत्मा (को) छोड़कर (सब) बातें (करे)।

अब अभी वह एक व्यक्ति ऐसा कहता है, वह श्रुतसागर, श्रुतसागर है न? कि अभी तो शुभभाव होता है। ऐसी प्ररूपणा करता है। अखबार में आया है। श्रुतसागर है, शान्तिसागर के मार्गानुसारी। वह कहते हैं कि अभी तो शुभभाव ही होता है। अर..र! प्रभु.. प्रभु.. प्रभु..! शुभभाव तो अभव्य को भी होता है। नौवें ग्रैवेयक जाए, उसे शुभभाव कैसा होता है? वैसा भाव तो अभी होता ही नहीं। आहाहा! वह शुभभाव तो जहर और बन्धन का कारण है। शान्तिसागर यहाँ आये थे। (संवत्) १९९७ में यहाँ आये थे। चौबीस घण्टे रहे थे। परन्तु दृष्टि बहुत दूसरी चीज़, बापू! प्रवृत्ति की क्रिया से अलग। दृष्टि अलग चीज़ है। आहाहा!

(यहाँ) तो ऐसा कहते हैं कि चौथे गुणस्थान से ज्ञानी को अबन्ध कहा। किस अपेक्षा से? मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की अपेक्षा से। बाकी तो दसवें गुणस्थान तक धर्मी, समकिति क्षायिक समकिति होता है। अरे! तीर्थकर होवे, उन्हें दसवें गुणस्थान तक

राग का अंश है और छह कर्म बँधते हैं। एकान्त खींच जाए कि बस! समकिती हुआ, इसलिए कुछ बन्ध ही नहीं है, आस्रव नहीं है। ऐसा नहीं है। इसके योग्य जो है, वह आस्रव और बन्ध नहीं है, ऐसा। आहाहा!

सर्व रागद्वेषमोह का अभाव होने से.. देखा? पाठ तो ऐसा है, देखा! 'सकलरागद्वेषमोह-व्युदासात्' है न? मूल पाठ ही है। यह टीका है, टीका (में) अन्दर अर्थ है 'सकलरागद्वेषमोह-व्युदासात्' आहाहा! सर्व रागद्वेषमोह का अभाव होने से ज्ञानी के कर्मबन्ध कदापि नहीं होता है। भावार्थ।

यहाँ तो महिमा प्रभु की है। वह महिमा करके अन्तर में जाने की बातें हैं, बापू! बाकी सब लाख-करोड़ (बातें करे), करोड़ों-मन्दिर बनावे और करोड़ों पुस्तकें बनावे... (वह कोई चीज़ नहीं है)।

**मुमुक्षु :** अभी अपने करोड़ों नहीं बनाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो कोई बनावे (उसकी बात है)। यह तो बाईस लाख हुए हैं। बाईस लाख, यहाँ से प्रकाशित हुई है। यह तो उस परमाणु की पर्याय उस काल में होनेवाली हो, वह होती है। कौन करे? बापू! भाई! वह परमाणु पुद्गल में उस समय की उस अवसर में वह पर्याय होनेवाली हो, वह होती है। आहाहा! उसे दूसरा कौन करे? आहाहा! होती हो, उसे कौन करे? उस-उस परमाणु में उस समय वह पर्याय (उस) अवसर में होनेवाली हो, वह होती है। होती है, उसे करे कौन? आहाहा! अभिमान करे कि हमने ऐसा किया और हमने ऐसा किया और हमने पुस्तकें बनायीं, शास्त्र बनाये, मन्दिर बनाये... कौन बनावे? प्रभु! यहाँ तो अन्तर में शुभराग हो, उसे भी बनाता हूँ और मेरा है, यह दृष्टि भी मिथ्या है। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई! वीतरागमार्ग दिगम्बर जैनदर्शन अलौकिक है। कहीं है नहीं। ऐसा मार्ग कहीं है नहीं। आहाहा! श्वेताम्बर में तो सब गड़बड़ की है। आहाहा! यह निर्मलानन्द प्रभु तो देखो। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका जिसे ज्ञान और अनुभव हुआ, उसे पूर्व में (बाँधे हुए) सत्ता में पड़े हुए कर्म होते हैं और उदय आते हैं परन्तु उसमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का जुड़ान नहीं है, इसलिए सकल मोह-राग-द्वेष का अभाव है, (ऐसा) मूल में इस अपेक्षा से कहा है। आहाहा!



**भावार्थ :** ज्ञानी के भी.. अर्थात् कि अज्ञानी को तो ठीक परन्तु ज्ञानी के भी पहले अज्ञान-अवस्था में बाँधे हुए द्रव्यास्रव.. अर्थात् परमाणु आठ जड़कर्म सत्ता में अजीवरूप से पड़े हैं। द्रव्यास्रव सत्ता-अवस्था में विद्यमान हैं.. देखा ? ये पड़े हुए हैं, उन्हें द्रव्यास्रव कहा। परमाणु नये आवें, उन्हें द्रव्यास्रव (कहे), वह तो और अलग वस्तु। यह तो सत्ता में पड़े (हैं, उन्हें द्रव्यास्रव कहा)। उसमें आता है—सिद्धान्त प्रवेशिका में यह आता है। पूर्व के पड़े हुए कर्म की सत्ता पड़ी है, उसे भी द्रव्यास्रव कहा जाता है। आहाहा! नये आवें, वह अलग वस्तु। जैन सिद्धान्त प्रवेशिका!

**मुमुक्षु :** इसमें पहले आ गया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आ गया है न! यह तो जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में डाला है। उन्हें द्रव्यास्रव कहना। आये थे न, आये थे न, इसलिए। पड़े हैं न! आहाहा! वे द्रव्यास्रव सत्ता-अवस्था में विद्यमान हैं और वे अपने उदयकाल में उदय में आते रहते हैं। जब सत्ता में से उनका उदय (में आने का समय) होवे, उस समय वे उदय में आते रहते हैं। किन्तु वे द्रव्यास्रव ज्ञानी के कर्मबन्ध के कारण नहीं होते,.. आहाहा! क्योंकि उनमें उसे अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व के परिणाम नहीं हैं, इसलिए वह जुड़ता नहीं है। इस अपेक्षा से (कहा है)।

**क्योंकि ज्ञानी के समस्त रागद्वेषमोहभावों का अभाव है।** यहाँ 'सकल' शब्द पड़ा है न! मूल पाठ में है। सकल गये हैं। पूरे मूल ही वह है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत के परिणाम, वे मेरे और मुझे लाभदायक (है, ऐसा भाव वह) मिथ्यात्व है और उसके साथ हुए राग-द्वेष, वह अनन्तानुबन्धी, वह मूल चीज़ है। वह संसार मूल है। मिथ्यात्व, वह आस्रव है, और मिथ्यात्व, वह संसार है। आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार संसार नहीं है। वह तो परचीज़ है संसार तो आत्मा की पर्याय में होता है, मोक्ष भी आत्मा की पर्याय में होता है, मोक्षमार्ग भी आत्मा की पर्याय में होता है, संसार भी आत्मा की पर्याय में होता है। आहाहा! आहाहा!

संसार अर्थात् मिथ्यात्व। आहाहा! इस राग के कण को भी अपना मानना और लाभदायक मानना, वह मिथ्यात्व, वह संसार है। यह कहते हैं न (कि) स्त्री, पुत्र छोड़ा, (उसने) संसार छोड़ा। (यह) खोटी बात है। कुटुम्ब, स्त्री छोड़े, दुकान छोड़ी, इसलिए

संसार छोड़ा, (यह) खोटी बात है। मिथ्यात्व, वह संसार है (और) वह मिथ्यात्व छोड़े तो संसार छोड़ा कहलाता है। आहाहा! भाषा समझ में आती है थोड़ी-थोड़ी ?

आहाहा! त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव परमात्मा विराजते हैं, महाविदेह में प्रभु तो विराजते हैं। आहा! प्रभु का करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष होते हैं। ऐसा एक करोड़ पूर्व का प्रभु का आयुष्य है। दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्यदेव वहाँ गये थे। साक्षात् भगवान के समवसरण में आठ दिन रहे थे। भरत (क्षेत्र) के मनुष्य, वह महाविदेह की यात्रा को गये! तीन लोक के नाथ की उपस्थिति, उनके पास गये, आठ दिन सुना। थोड़ी बहुत शंका का समाधान श्रुतकेवलियों के निकट किया। वहाँ तो श्रुतकेवली विराजते हैं, वर्तमान (में विराजते हैं)। आहाहा! वहाँ से आकर यह बनाया है। आहाहा! और उसमें से अमृतचन्द्राचार्यदेव ने टीका और कलश (बनाये हैं)। आहाहा! अमर के धाम में जाना हो, उसे कैसे जाना, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। अमर आत्मा-अमर धाम है! आहाहा! और मोक्ष को भी अमर कहते हैं न! मोक्ष को अमृत कहते हैं, शास्त्र में मोक्ष को अमृत भी कहते हैं। अमर कहते हैं, अमृत कहते हैं, मोक्ष कहते हैं। आहाहा!

यह आत्मा अमृत और अमरस्वरूप है, प्रभु! वास्तव में तो इसे दया, दान के विकल्प, व्रत के विकल्प का भी सम्बन्ध नहीं है। यह तो सकल त्रिकाल निरावरण प्रभु अन्दर विराजता है। आहाहा! सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिकपरमभाव लक्षण निजपरमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। आहाहा! आहाहा! ऐसे धर्मी अपने आत्मा को ऐसा भाता है। आहाहा! मैं रागी हूँ और स्त्रीवाला तथा पुत्रवाला और पैसेवाला, यह तो कुछ है ही नहीं। आहाहा! परन्तु एक समय की पर्याय जितनी खण्ड-खण्ड है, उसकी भी भावना ज्ञानी को नहीं है। ज्ञानी को अपनी-अखण्ड की भावना है। आहाहा! इस अखण्ड की भावना में जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, इससे उस धर्मी को पूर्व के बाँधे हुए कर्म उदय में आवें, परन्तु मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का जुड़ान नहीं है। आहाहा! सम्यक् और स्वरूप स्थिरता का जुड़ान यहाँ हो गया है। इसलिए मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का ऐसा जुड़ान होता था, वह गया। आहाहा! बापू! अन्तर का मार्ग ऐसा बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! वाद-विवाद से तो कुछ (पार आवे, ऐसा नहीं)।

जिसे अन्तर (लगनी) लगी हो, (उसका काम है)। यह भव... भव चौरासी लाख के अवतार अनन्त भव, इस भव का जिसे डर लगे। चाहे तो स्वर्ग का भव (होवे) परन्तु वह दुर्गति है। तेरी गति नहीं, नाथ! आहाहा! तेरी गति तो अन्दर शुद्धरूप से परिणमना, वह तेरी गति है। आहाहा! स्वर्ग की गति भी दुर्गति है। वहाँ दुःख है, आकुलता है, कषाय है, वह सुखी नहीं।

सुख तो आत्मा में है। आहाहा! ऐसे सुखसागर को जहाँ खोजकर देखा, जाना... आहाहा! कहते हैं कि उसे अब पूर्व की सत्ता के कर्म उदय में समय-समय आने पर भी उसमें उसका जुड़ान नहीं है। ऐसे (अन्तर में) जुड़ान हुआ है तो ऐसा (बाहर में) जुड़ान नहीं है, यह ऐसी दो बातें की है। अस्थिरता की बात को गौण कर डाला। आहाहा! प्रभु में जुड़ान गया है, वह रंक में—उदय में नहीं जुड़ता। आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ समस्त रागद्वेषमोह का अभाव बुद्धिपूर्वक रागद्वेषमोह की अपेक्षा से समझना चाहिए। देखा? बुद्धि अर्थात् रुचिपूर्वक। प्रेमपूर्वक जो राग-द्वेष-मोह (होता है), वह उसे नहीं है। बुद्धिपूर्वक (अर्थात्) करनेयोग्य है, ऐसी बुद्धिपूर्वक। उसे राग-द्वेष और मोह का अपेक्षा से अभाव कहा है। आहाहा!

### कलश-११९

अब इसी अर्थ को दृढ़ करनेवाली आगामी दो गाथाओं का सूचक श्लोक कहते हैं:-

( अनुष्टुप् )

राग-द्वेष-विमोहानां ज्ञानिनो यदसम्भवः ।

तत एव न बन्धोऽस्य ते हि बन्धस्य कारणम् ॥११९॥

श्लोकार्थः : [यत्] क्योंकि [ज्ञानिनः रागद्वेषविमोहानां असम्भवः] ज्ञानियों के रागद्वेषमोह का असम्भव है [ततः एव] इसलिए [अस्य बन्धः न] उनके बन्ध नहीं है; [हि] कारण कि [ते बन्धस्य कारणम्] वे (रागद्वेषमोह) ही बन्ध का कारण है ॥११९॥

## श्लोक - ११९ पर प्रवचन

अब इसी अर्थ को दृढ़ करनेवाली आगामी दो गाथाओं का सूचक श्लोक कहते हैं:- ११९ कलश।

राग-द्वेष-विमोहानां ज्ञानिनो यदसम्भवः।

तत एव न बन्धोऽस्य ते हि बन्धस्य कारणम् ॥११९॥

आहाहा! श्लोकार्थ - क्योंकि 'ज्ञानिनः रागद्वेषविमोहानां असंभवः' ज्ञानियों के रागद्वेषमोह का असम्भव है.. मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अभाव (हुआ), उसे यहाँ अभाव कहा है। आहाहा! धर्मी को, धर्मी जीव की दृष्टि में तो भगवान है। आहाहा! अज्ञानी की दृष्टि में राग है और पर्याय है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि की दृष्टि में पर्याय एक समय की या राग है, वह उसकी दृष्टि में है। इसलिए दृष्टि का विषय (जो) स्वभाव, उसका उसे अनादर है। आहाहा! समकिति को पूर्णानन्द का स्वभाव, वही आदरणीय और (उसका ही) सत्कार है। वही उसकी चीज़ है और उसे वह आदरता है। इसलिए वे राग-द्वेष अस्थिरता के हों, उन्हें आदर नहीं देता। उसमें उत्साह और हर्ष नहीं करता। आता है, धर्मी को राग, विनय, व्यवहार, देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति—ऐसा भाव आता है (परन्तु) है बन्ध का कारण। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! बहुत (कठिन) काम। जगत के साथ मेल करना मुश्किल पड़े, ऐसा है। जगत अर्थात् मिथ्यात्व और संसार.. आहाहा!

आहाहा! इसलिए ज्ञानियों के रागद्वेषमोह का असम्भव है.. वह अभाव कहा था, यह असम्भव कहा। इसलिए 'अस्य बन्धः न' उनके बन्ध नहीं है; कारण कि 'ते बन्धस्य कारणम्' वे (रागद्वेषमोह) ही बन्ध का कारण है। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष, वही बन्ध का कारण है। वह ज्ञानी को नहीं है। आहाहा! अब ऐसा सब पढ़े और एकान्त ले जाए। आहाहा! और वापस वे उसमें कह गये हैं न, कि यथाख्यातचारित्र न हो, तब तक जघन्य भाव में है, उसे बन्ध है। वे कह गये हैं। आहाहा! यह बात बतला दी है।

गाथा-१७७-१७८

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।  
तम्हा आसव-भावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥१७७॥  
हेदू चदुव्वियप्पो अट्ट-वियप्पस्स कारणं भणिदं ।  
तेसिं पि य रागादी तेसि-मभावे ण बज्झन्ति ॥१७८॥  
रागो द्वेषो मोहश्च आस्रवा न सन्ति सम्यग्दृष्टेः ।  
तस्मादास्रवभावेन विना हेतवो न प्रत्यया भवन्ति ॥१७७॥  
हेतुश्चतुर्विकल्पः अष्ट-विकल्पस्य कारणं भणितम् ।  
तेषा-मपि च रागादयस्तेषा-मभावे न बध्यन्ते ॥१७८॥

रागद्वेषमोहा न सन्ति सम्यग्दृष्टेः सम्यग्दृष्टित्वान्यथानुपपत्तेः । तदभावे न तस्य द्रव्यप्रत्ययाः  
पुद्गल-कर्महेतुत्वं बिभ्रति, द्रव्यप्रत्ययानां पुद्गलकर्महेतुत्वस्य रागादि-हेतुत्वात् । ततो हेतुहेत्वभावे  
हेतुमदभावस्य प्रसिद्धत्वात् ज्ञानिनो नास्ति बन्धः ॥१७७-१७८॥

अब, इस अर्थ की समर्थक दो गाथाएँ कहते हैं:-

नहिं रागद्वेष, न मोह-वे आश्रव नहीं सदृष्टि के।  
इससे हि आस्रवभाव बिन, प्रत्यय नहीं हेतू बने ॥१७७॥  
हेतू चतुर्विध कर्म अष्ट प्रकार का कारण कहा।  
उनका हि रागादिक कहा, रागादि नहिं वहाँ बंध ना ॥१७८॥

गाथार्थ : [रागः] राग, [द्वेषः] द्वेष [च मोहः] और मोह-[आस्रवाः] यह  
आस्रव [सम्यग्दृष्टेः] सम्यग्दृष्टि के [न संति] नहीं होते [तस्मात्] इसलिए [आस्रवभावेन

विना] आस्रवभाव के बिना [प्रत्ययाः] द्रव्य प्रत्यय [हेतवः] कर्मबन्ध के कारण [न भवन्ति] नहीं होते।

[चतुर्विकल्पः हेतुः] (मिथ्यात्वादि) चार प्रकार के हेतु [अष्टविकल्पस्य] आठ प्रकार के कर्मों को [कारण] कारण [भणितम्] कहे गये हैं, [च] और [तेषाम् अपि] उनके भी [रागादयः] (जीव के) रागादि भाव कारण हैं; [तेषाम् अभावे] इसलिए उनके अभाव में [न बध्यन्ते] कर्म नहीं बँधते। (इसलिए सम्यक्दृष्टि के बन्ध नहीं है।)

टीका : सम्यक्दृष्टि के रागद्वेषमोह नहीं हैं क्योंकि सम्यग्दृष्टि की अन्यथा अनुपपत्ति है (अर्थात् रागद्वेषमोह के अभाव के बिना सम्यक्दृष्टि नहीं हो सकता); रागद्वेषमोह के अभाव में उसे (सम्यक्दृष्टि को) द्रव्य प्रत्यय पुद्गलकर्म का (अर्थात् पुद्गलकर्म के बन्धन का) हेतुत्व धारण नहीं करते क्योंकि द्रव्यप्रत्ययों के पुद्गलकर्म के हेतुत्व के हेतु रागादिक हैं; इसलिए हेतुके हेतुके अभाव में हेतुमान् का (अर्थात् कारण का जो कारण है उसके अभाव में कार्य का) अभाव प्रसिद्ध है, इसलिए ज्ञानी के बन्ध नहीं है।

भावार्थ : यहाँ, रागद्वेषमोह के अभाव के बिना सम्यग्दृष्टित्व नहीं हो सकता ऐसा अविनाभावी नियम बताया है, सो यहाँ मिथ्यात्वसम्बन्धी रागादि का अभाव समझना चाहिए। यहाँ मिथ्यात्वसम्बन्धी रागादि को ही रागादि माना गया है। सम्यक्दृष्टि होने के बाद जो कुछ चारित्रमोहसम्बन्धी राग रह जाता है, उसे यहाँ नहीं लिया है; वह गौण है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि के भावास्रव का अर्थात् रागद्वेषमोह का अभाव है। द्रव्यास्रवों को बन्ध का हेतु होने में हेतुभूत जो रागद्वेषमोह हैं, उनका सम्यक्दृष्टि के अभाव होने से द्रव्यास्रव बन्ध के हेतु नहीं होते, और द्रव्यास्रव बन्ध के हेतु नहीं होते इसलिए सम्यक्दृष्टि के-ज्ञानी के-बन्ध नहीं होता।

सम्यक्दृष्टि को ज्ञानी कहा जाता है वह योग्य ही है। 'ज्ञानी' शब्द मुख्यतया तीन अपेक्षाओं को लेकर प्रयुक्त होता है:- (१) प्रथम तो, जिसे ज्ञान हो, वह ज्ञानी कहलाता है; इस प्रकार सामान्य ज्ञान की अपेक्षा से सभी जीव ज्ञानी हैं। (२) यदि सम्यक् ज्ञान और मिथ्या ज्ञान की अपेक्षा से विचार किया जाये तो सम्यग्दृष्टि को सम्यग्ज्ञान होता है, इसलिए उस अपेक्षा से वह ज्ञानी है, और मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। (३) सम्पूर्ण ज्ञान और अपूर्ण ज्ञान की अपेक्षा से विचार किया जाये तो केवली भगवान ज्ञानी हैं और

छद्मस्थ अज्ञानी हैं क्योंकि सिद्धान्त में पाँच भावों का कथन करने पर बारहवें गुणस्थान तक अज्ञानभाव कहा है। इस प्रकार अनेकान्त से अपेक्षा के द्वारा विधिनिषेध निर्बाधरूप से सिद्ध होता है; सर्वथा एकान्त से कुछ भी सिद्ध नहीं होता।

गाथा - १७७-१७८ पर प्रवचन

अब, इस अर्थ की समर्थक दो गाथाएँ कहते हैं:-

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।  
 तम्हा आसव-भावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥१७७॥  
 हेदू चदुव्वियप्पो अट्ट-वियप्पस्स कारणं भणिदं ।  
 तेसिं पि य रागादी तेसि-मभावे ण बज्झन्ति ॥१७८॥  
 नहीं रागद्वेष, न मोह-वे आश्रव नहीं सदृष्टि के।  
 इससे हि आस्रवभाव बिन, प्रत्यय नहीं हेतू बने ॥१७७॥  
 हेतू चतुर्विध कर्म अष्ट प्रकार का कारण कहा।  
 उनका हि रागादिक कहा, रागादि नहीं वहाँ बंध ना ॥१७८॥

आहाहा! टीका : सम्यग्दृष्टि के रागद्वेषमोह नहीं हैं... यह वे। मिथ्यात्व और राग-द्वेष। मोह अर्थात् मिथ्यात्व (और) राग-द्वेष अर्थात् अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष। ऐसा पढ़कर दीपचन्द्रजी (सेठियाजी) को हो गया था न! भूल निकाली थी न वह? सोगानी की, न्यालचन्द्र सोगानी कहते हैं कि ज्ञानी को भी शुभराग आवे, वह ऐसा दुःख लगता है, दुःख है। वह इन्हें नहीं सुहाया। बापू! धर्मी है, भले क्षायिक समकिति हो... आहाहा! बाहुबलीजी और भरत दोनों लड़े, तो भी समकिति हैं। अन्दर राग आया है, परन्तु वह राग अस्थिरता का राग दोष है, दुःख है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव दुःख है। राग है, वह जहर है, दुःख है। प्रभु अमृत का सागर है, उससे उल्टा भाव है। वह शुभभाव भी अमृत के सागर से उल्टा भाव है। आहाहा!

अरे रे! भगवान महाप्रभु विराजता है, कहते हैं। वहाँ तेरा आसन डालता नहीं और

आसन... आहाहा! अच्छे स्थान में आसन डालता नहीं और विष्टा में आसन डालता है। इसी प्रकार राग और द्वेष, पुण्य-पाप में आसन डाला। आहाहा! उदासीनोऽसी आता है न अन्दर? उदासीनोऽसी! धर्मी तो राग और द्वेष से उदासीन है, उससे उसका आसन भिन्न अन्दर आत्मा पर पड़ा है। आहाहा! उदासीन—उद + आसीन। भगवान धाम है, चैतन्यवस्तु है, वहाँ उसका आसन दृष्टि स्थापित है, वह उसका स्थल है, वह उसकी जमीन है, वह उसका स्वामी है और वह उसका मालिक है। आहाहा! जमीन का स्वामी होता है न? यह (वास्तविक) जमीन यह है। अनन्त-अनन्त गुण से भरपूर भगवान, वह धर्मी का स्थान और क्षेत्र, दल वह चीज़ है। रागादि हो परन्तु वह उसकी चीज़ नहीं है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि के रागद्वेषमोह नहीं.. (ऐसा) यहाँ तो कहा है। **क्योंकि सम्यग्दृष्टि की अन्यथा अनुपपत्ति है..** भाषा देखो! आहाहा! मिथ्यात्व सम्बन्धी के भाव और राग-द्वेष गये न हों और सम्यग्दृष्टि हो, ऐसा तीन काल में नहीं बनता। सम्यग्दृष्टि के शुद्ध सम्यग्दर्शन का भाव (हुआ) और अनन्तानुबन्धी के अभावरूप भाव हुआ, वहाँ राग-द्वेष मेरे हैं, ऐसा भाव नहीं हो सकता।

आहाहा! यह कहते हैं, **सम्यग्दृष्टि की अन्यथा अनुपपत्ति है (अर्थात् रागद्वेषमोह के अभाव के बिना सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता);..** यहाँ कितने ही कहते हैं कि जरा भी राग रहे, तब तक मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कितने ही कहते हैं। यह बात यहाँ नहीं है। आहाहा! यहाँ तो मिथ्यात्व सम्बन्धी, विपरीत मान्यता महा संसार है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ मोक्षस्वरूप है, उससे (विपरीत) मिथ्यात्व भाव (अर्थात्) राग के विकल्प को अपना मानना, ऐसा मिथ्यात्व भाव वही महा संसार और अनन्त जन्म-मरण का गर्भ है। आहाहा! अब उसकी जिसे कीमत नहीं, वह यह दया, दान और व्रत-तप-भक्ति करेंगे तो धर्म हो जाएगा, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! भाई! वह शुभभाव है। आहाहा! धर्म तो शुद्ध उपयोग हो, तब धर्म है। शुभ और अशुभ दोनों अशुभ हैं, अशुद्ध हैं। आहाहा! वह अशुद्धता यहाँ नहीं है। सम्यग्दृष्टि में जो राग-द्वेष-मोह तीव्र है, वह अशुद्धता उसे नहीं है, इसलिए सर्व राग-द्वेष-मोह का अभाव है। आहाहा!

यह १७१ गाथा में कह गये हैं। ज्ञानी को भी, जघन्यभाव से देखता है, श्रद्धता है।



देखता-जानता है, ऐसा वहाँ लिया। इससे अभी उत्कृष्ट भाव से नहीं देखता, इसलिए अभी उसे आस्रव और बन्ध आता है। पूर्णानन्द के नाथ के पूर्णरूप से देखकर, श्रद्धा करे और स्थिर हो, पूर्णरूप से स्थिर हो, उसे अब आस्रव और बन्ध नहीं होता। यहाँ जो कहते हैं, वह तो समकित की अपेक्षा की बात है। आहाहा! ऐसा धर्म कैसा! यह सब यात्रा करे, मन्दिर बनावे, लाखों रुपये खर्च करे, दस-दस लाख (खर्च करे), दस क्या तेरे अरब खर्च कर न! वह कहाँ तेरी चीज़ है? वह तो जड़ है। आहाहा! पैसा मेरा है, ऐसा मानकर दे, वह तो मिथ्यात्व है। अजीव, जीव का है (ऐसा नहीं है), वह तो अजीव है। आत्मा भगवान तो जीव है। जीव का अजीव—पैसा होगा? उस अजीव को जीव माने, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! कठिन काम। सम्यग्दर्शन में यह बात छूट जाती है। वह राजपाट में पड़ा हो, करोड़ों रुपये दान में देता हो परन्तु अन्दर स्वामी नहीं (होता)। जानता है कि ऐसा होता है, यह जाता है, यह जाता है। यह रहता है, यह जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

(सम्यग्दृष्टि को) द्रव्य प्रत्यय पुद्गलकर्म का.. द्रव्य अर्थात् जुड़ान, पुराने जड़कर्म। पुद्गलकर्म का (अर्थात् पुद्गलकर्म के बन्धन का) हेतुत्व धारण नहीं करते.. आहाहा! धर्म की जहाँ अन्दर आत्म-अनुभव की दृष्टि हुई, भेदज्ञान हो गया, राग से-विकल्प से पृथक् पड़ गया। वह पृथक् पड़ा, वह भगवान आत्मा... आहाहा! उसे पुराने कर्म पड़े हैं, वह बन्ध का हेतु नहीं होता। आहाहा! है? द्रव्य प्रत्यय अर्थात् पुराने जड़ (कर्म) आस्रव कहा न? प्रत्यय अर्थात् आस्रव। वे द्रव्यास्रव कहे, यहाँ प्रत्यय कहा। पूर्व के पड़े हैं वे, हों!

पुद्गलकर्म के हेतुत्व के हेतु रागादिक हैं;.. हेतुत्व धारण नहीं करते क्योंकि द्रव्यप्रत्ययों के पुद्गलकर्म के हेतुत्व के हेतु रागादिक हैं;.. पूर्व के कर्म नये कर्म के कारण में मिथ्यात्व और राग-द्वेष हों तो बन्ध का कारण होते हैं। आहाहा! है? जड़कर्म पुद्गलकर्म के हेतुपना-नये बन्ध का निमित्त, पुराने कर्म नये बन्धन का निमित्त, उस निमित्त में भी हेतु रागादि हैं। पुराना (कर्म) निमित्त है, यह आ गया है कि पुराना कर्म है, वह नये कर्म का कारण है, परन्तु कब? कि पुराने कर्म में (जुड़कर) स्वयं राग-द्वेष और मिथ्यात्व करे तब। आहाहा! अब ऐसी बातें, अभी तो समझना कठिन पड़े।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की रीति ही -कला ही अलग प्रकार है। पूरी दुनिया से

उनकी रीति अलग है। आहाहा! एक-एक परमाणु अपनी पर्याय से उस समय परिणमे, उसे कौन परिणमावे, कहते हैं। यह शरीर है, देखो! ऐसे-ऐसे चले, वह तो इसकी पर्याय जड़ की है। आत्मा इसे करे, आत्मा हाथ को हिला सके, यह तीन काल में नहीं होता। यह कौन माने? आहाहा! यह लकड़ी है, (यह) भी ऐसे ऊँची-नीची होती है, देखो! इसकी अवस्था (होती है), उसका कर्ता यह पुद्गल है, उसका कर्ता अंगुली नहीं। आहाहा! इस हाथ के आधार से यह लकड़ी रही है? नहीं। इस परमाणु में आधार नाम का गुण है, उसके कारण लकड़ी (उसके) आधार से रही है, हाथ के आधार से नहीं। अरे! यह कैसे जँचे? देवीलालजी! आहाहा!

जगत का एक-एक रजकण, यह तो अनन्त रजकण का दल है। एक-एक रजकण की उस समय में होनेवाली जो अवस्था, उसे दूसरा रजकण या दूसरा आत्मा कर नहीं सकता। आहाहा! हल्का.. हल्का.. हल्का कर डाला। हल्का ही है। पर के कार्य के कर्तापने से रहित प्रभु है। आहाहा! यह कहते हैं, आहाहा! धर्मी को बन्ध का कारण कब होता है? कि पुराने कर्म नये कर्म के आने का (कारण) कब होगा? कि उस पुराने कर्म में मिथ्यात्व और राग-द्वेष का निमित्त होवे, पुराने कर्म में मिथ्यात्व और राग-द्वेष का निमित्त होवे तो पुराना कर्म, नये कर्म का कारण होगा। आहाहा! है?

**द्रव्यप्रत्यय..** अर्थात् जड़ पुद्गलकर्म के (अर्थात्) नये (कर्म के) हेतु का हेतु। नये कर्म आने का निमित्त वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष है। आहाहा! बन्ध अधिकार में भी ऐसा कहा है न? जो कोई आत्मा के उपयोग में राग करे, वह बन्ध मिथ्यात्व है। राग करे (ऐसा) अकेले की बात नहीं ली है। जानने के उपयोग में राग को करे, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! बन्ध अधिकार में पहली शुरुआत (में बात की है)।

समयसार तो अलौकिक चीज़ है! दोपहर को प्रवचनसार (चलता है), नियमसार कोई अलौकिक शास्त्र है। कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र अर्थात् केवली की वाणी है!! आहाहा! परन्तु समझने के लिए बहुत प्रयत्न चाहिए। बापू! आहाहा!

**द्रव्यप्रत्ययों के पुद्गलकर्म के हेतुत्व..** नये का हेतु, उसका हेतु रागादिक हैं; इसलिए हेतु के हेतु के अभाव में.. आहाहा! यह क्या कहा? पुराने कर्म जो हेतु हैं,

उनका हेतु मिथ्यात्व और राग-द्वेष है। ऐसे हेतु के हेतु के अभाव में हेतुमान् का (अर्थात् कारण का जो कारण है, उसके अभाव में कार्य का) अभाव प्रसिद्ध है इसलिए ज्ञानी के बन्ध नहीं है। आहाहा! पुराने कर्म, नये को निमित्त हो, परन्तु उन पुराने कर्म को निमित्त जीव के मिथ्यात्व और राग-द्वेष होवें तो। आहाहा! इसलिए धर्मी को आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन में है, इसलिए उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष नहीं है, इसलिए उसे पुराने कर्म को निमित्त होना और नये कर्म हों, यह एक भी है नहीं। नहीं मिथ्यात्व, राग-द्वेष परिणाम, नहीं पुराने कर्म को निमित्त होना और पुराना कर्म नये को लाना, यह एक भी उसे नहीं है। आहाहा! उसे बन्धन ही नहीं है—ऐसा कहते हैं। है ?

(अर्थात् कारण का जो कारण है, उसके अभाव में..) कारण का कारण अर्थात् ? पुराने कर्म नये का कारण है परन्तु उस कारण का कारण अज्ञानी के राग-द्वेष और मोह है। ऐसे कारण के अभाव में कार्य का.. अर्थात् नये बन्धन का। अभाव प्रसिद्ध है, इसलिए ज्ञानी के बन्ध नहीं है। इस कारण से धर्मी को बन्ध नहीं है।

विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)